# तीसरा विकल्प

स्वदेशी जागरण मंच

# तीसरा विकल्प

दत्तोपंत ठेंगड़ी

देश के आर्थिक हालात के बारे में पिछले ४५ वर्षो से योजनाबद्ध रूप से जनता को गलत सूचनाएं दी गई हैं। डॉ. गोएबल्स (Joseph Goebbels) कहते थे कि कोई भी झूठ सौ बार दोहराइए वह सत्य हो जाता है। इस अवस्था में एक बार सत्य का सामना हो जाने पर भी उस पर विश्वास करना बहुत कठिन होता है। जैसे एक कपड़ा अस्वच्छ है, शुभ्र नहीं है, मैला है तो उसके ऊपर चित्र बनाना बहुत कठिन हो जाता है। उस स्थिति में पहला काम उसे साफ करना पड़ेगा तब उस पर नया चित्र बनाया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, अब कहा जा रहा है कि कम्युनिज्म का पतन हो गया। लेकिन किसी का भी पतन एकाएक नहीं होता। जिस भवन के बनने में १००-१५० वर्ष लगे हैं उसके गिरने में भी समय तो लगेगा। लेकिन इसकी प्रक्रिया चल रही है।

कहा जाने लगा है कि अब कम्युनिज्म पर से लोगों का विश्वास हट गया है और लोग बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था की तरफ जायेंगे। चूंकि और कोई विकल्प नहीं है इसलिए पूर्व कम्युनिस्ट देश स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की ओर जा रहे हैं, ऐसा दिखता है।

कम्युनिज्म पर से उनका विश्वास हटकर बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था पर हो गया हो, ऐसी बात नहीं है। दरअसल, तुरन्त कोई विकल्प दिखाई नहीं दे रहा है इसलिए वे बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था को स्वीकार कर रहे है। लेकिन बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था के जो दुष्परिणाम हैं उन्हें वे जानते है और वे सभी लोग तीसरे विकल्प की खोज में हैं। आज कल पूर्व कम्युनिस्ट देशों में तीसरा विकल्प शब्द बहुत चल रहा है। और जब तक तीसरा विकल्प नहीं मिलता, तब तक वे स्वतंत्र अर्थव्यवस्था को स्वीकार कर रहे है। इसलिए यह धारणा बनाना कि कम्युनिज्म का पतन हुआ है इस कारण पूंजीवादी अर्थव्यवस्था लोकप्रिय हो गई है, ठीक नहीं है। वैसे यह भी एक भ्रांति है कि बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था स्वतंत्र अर्थव्यवस्था है। बार-बार कहा जाता है कि कम्युनिस्टों कि अर्थव्यवस्था यानी नियंत्रित अर्थव्यवस्था और इसके विरोध में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था यानी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था। यदि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था स्वतंत्र अर्थव्यवस्था होती तो उसमें एकाधिकार कैसे आ सकता है? व्यवहार में देखा गया है कि जहाँ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था चलती है वहाँ एकाधिकार भी होता है। स्वतंत्र

अर्थव्यवस्था का मतलब है ‘प्रतिस्पर्धा’ और जहाँ प्रतिस्पर्धा स्वतंत्र रूप से चलती है वहाँ एकाधिकार आ ही नहीं सकता। एकाधिकार आता है तो कानून के सहारे ही। पेटेंट्स और ब्रान्ड्स के कानून से एकाधिकार कायम होता है।

## लचर तर्क

हमें यह बात बार-बार समझाया जा रहा है कि देश के आर्थिक ढांचे की मजबूती के लिए पश्चिमी अर्थतंत्र का अनुकरण करना ही पड़ेगा। तर्क यह दिया जाता है कि हमारे यहाँ न तो कोई अर्थतंत्र था और न ही अर्थशास्त्र। हमारा धर्म यानी पूजा-पाठ करना, तिलक लगाना, कर्म-कांड करना, इससे लोग सात्विक हो गए लेकिन उनकी भौतिक बातों में कोई खास रुचि नहीं थी। इस कारण यदि आर्थिक क्षेत्र में कोई विकल्प खोजना हो तो वह पश्चिम में ही खोजना पड़ेगा। यह धारणा गलत है। दरअसल, हमारा भी अपना हिन्दू विचार चिन्तन है, हिन्दू अर्थशास्त्र है, हिन्दू व्यवस्था है। यह जानकर आश्चर्य होगा कि अपने यहाँ नैतिक सिद्धांत के रूप में सभी बातें मिलेगी। यद्यपि उनका विकास नहीं हो पाया क्योंकि विकसित करने वाला कोई नहीं है। जिनके हाथ में शासन है वे हिन्दू अर्थशास्त्र को विकसित करना ही नहीं चाहते। लेकिन अपने यहाँ सब चीजों के बारे में मार्गदर्शक सिद्धांत बने हैं। उदाहरण के लिए मैं बताता हूँ कि प्राइस पॉलिसी के बारे में काफी चर्चा चलती है। अब तक उसके दो ही नमूने बताए गए हैं। एक कम्युनिस्ट नमूना, यानी सभी कीमतें सरकार के द्वारा नियंत्रित हों। दूसरा स्वतंत्र अर्थव्यवस्था, मांग और पूर्ति के आधार पर। लेकिन हमारे यहाँ संतुलन भी किया गया था। कीमतों के बारे में शुक्राचार्य ने कहा था कि वस्तु के उत्पादन में जितना मूल्य लगेगा वही लागत मूल्य, उसकी वास्तविक कीमत है और यह कीमत बाजार में वस्तु की सुलभता, गुणवत्ता और आवश्यकता के आधार पर कम-अधिक होती रहती है। लेकिन उसमें एक सीमा से अधिक अन्तर नहीं आना चाहिए। यानी, मांग और पूर्ति के नियम पर विचार तो किया लेकिन उसे नियंत्रण में रखकर यह स्पष्ट किया कि लागत मूल्य को आधार मानकर ही कीमत का निर्धारण होना चाहिए, मनमाने ढंग से अनाप-शनाप कीमत तय नहीं कर सकते।

## धर्माधिष्ठित अर्थ की जरूरत

हमारे विद्वान लोग विदेश के बारे में तो बहुत जानकारी रखते है लेकिन स्वदेश के बारे में नहीं रखते। इसीलिए यह धारणा बन गई है कि हमारी संस्कृति और धर्म का अर्थशास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन विश्व प्रसिद्ध अर्थशास्त्री केनिथ बोल्डिंग (Kenneth E. Boulding) ने कहा है कि जहाँ धार्मिक भावना प्रबल है वहाँ की मांग का स्वरूप और जहाँ धार्मिक भावना नहीं है, केवल भौतिकता हेतु वहाँ की मांग का स्वरूप अलग होता है। हमारे देश के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त १२-१३ अर्थशास्त्रियों में से एक पी. आर. ब्रह्मानन्द ने हाल ही में कर्नाटक में एक भाषण में कहा कि हमारे यहाँ धर्म की क्या व्यवस्था थी, यह तो हमने देखी नहीं किन्तु इसी के आधार पर अर्थ होना चाहिए। उनका वाक्य था “धर्माधिष्ठित अर्थ” होना चाहिए।

पश्चिम के लोग केवल भौतिकवादी है, हमारे यहाँ भौतिकता का अभाव नहीं है लेकिन भौतिक और अभौतिक समुत्कर्ष और निःश्रेयस दोनों को एक माना गया है। इसका कारण हमारे यहाँ की धर्माधिष्ठित मनोरचना है। विदेशियों का सिद्धांत है अधिकतम उत्पादन-अधिकतम उपभोग। जबकि हमारा सिद्धांत रहा है अधिकतम उत्पादन-न्यूनतम उपभोग, नियंत्रित उपभोग, संयमित उपभोग। शायद पश्चिमी देशों को उसकी इतनी आवश्यकता नहीं, जितनी हमारे नव जागरूक, नवस्वंतत्र देश को है। जहाँ संयमित उपभोग की धारणा है वहाँ बचत बढ़ती है और हमने यदि बचत बढ़ाई तो हमारी अर्थव्यवस्था इतनी विकसित हो सकती है, जिसका हमें अंदाजा भी नहीं होगा। हमने पश्चिम के भौतिकवादी मापदण्ड अपनाए हैं। हमने भी उपभोक्तावाद को स्वीकार किया है इसके कारण हम यदि अपनी संस्कृति के अनुसार न्यूनतम उपभोग को स्वीकार करेंगे तो कितना लाभ होगा इसकी कल्पना अभी नहीं है। हमारे जो बड़े औद्योगिक घराने हैं उनमें से एक के मुखिया ने करीब १०-११ साल पहले एक वक्तव्य दिया था कि जहाँ तक घरेलू बाजार का सवाल है उसमें हम स्वयं अपने आप में एक विश्व हैं।

आज जापान तकनीकी दृष्टि से सबसे विकसित देश है लेकिन वहाँ भी संसाधन बाहर से लाने पड़ते हैं। इसीलिए जापान के बारे में कहा गया है कि वह एक गरीब देश है

जिसकी जनता धनी है। हमारे पास संसाधन बहुत है, हमारे बारे में कहा जाता है कि भारत धनी देश है लेकिन इसकी जनता गरीब है। मानव-श्रम, वैज्ञानिक तकनीक और प्रतिभा हमारे पास इतनी है कि आज की स्थिति में भी हम विश्व की तीसरी बड़ी वैज्ञानिक शक्ति है। पहला अमरीका, दूसरा था सोवियत संघ और तीसरा है हिन्दुस्थान।

जहाँ तक घरेलू बाजार का सम्बन्ध है, यदि व्यापार पर हमारा ही कब्जा रहा तो कीमतें बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। डॉ. अम्बेडकर, जो अर्थशास्त्री भी थे, ने बहुत पहले कहा था कि यदि यहाँ की कीमतें कम रहती हैं तो भुगतान संतुलन की स्थिति में गड़बड़ी नहीं होगी। और फिर रुपए के अवमूल्यन करने की बारी नहीं आएगी।

हम आज आर्थिक गुलामी के दौर से गुजर रहे हैं। १९४७ में हमें राजनीतिक स्वातंत्र्य मिला। हमारे नेता भले ही कहें कि यह हमारे पराक्रम के कारण मिला लेकिन दूसरे महायुद्ध के पश्चात जो जागतिक परिस्थिति निर्माण हुई उसके दबाव के कारण अपने उपनिवेशों को स्वतंत्र करना सभी श्वेत साम्राज्यवादी देशों के लिए जरूरी हो गया। यदि हमारे पराक्रम के कारण स्वतंत्रता मिली होती तो सिंगापुर को क्यों आजादी मिलती? छोटे-छोटे देशों को भी उस समय स्वतंत्रता मिली वह अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का दबाव था। अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण स्वतंत्रता उन्होंने तो दे दी लेकिन स्वतंत्रता देने के बाद उनकी हालत जर्जर हो गई। उस समय हमारे यहाँ भ्रांति थी कि श्वेत साम्राज्यवादी देश बहुत समृद्ध हैं। वास्तव में ये देश समृद्ध नहीं थे। उपनिवेशों के शोषण के आधार पर वे समद्ध दिखाई देते थे। उदाहरण के लिए यहाँ कपास पैदा होती थी। उनका शासन था इसलिए कम से कम मूल्य पर यहाँ की कपास खरीदते थे और इंग्लैण्ड ले जाते थे। मेनचेस्टर में उसका कपड़ा बनाते थे और फिर यहाँ लाकर अधिक कीमत में वही कपड़ा बेचते थे। उपनिवेशों का दो तरह का काम रहता था। साम्राज्यवादी देशों को कच्चा माल सस्ती दरों पर देना और साम्राज्यवादी देशों के उत्पादों के लिए बाजार का काम भी करना। दोहरा शोषण होता था। उपनिवेशों के स्वतंत्र होने के बाद यह शोषण बंद हो गया तो साम्राज्यवादियों का आर्थिक ढांचा चरमराने लगा क्योंकि उनके पास इतने आर्थिक संसाधन नहीं थे। वे सोचने लगे कि अपने अर्थव्यवस्था को पहले जैसा मजबूत कैसे किया जाए। उन्होंने सोचा कि जब तक

अन्य लोगों का शोषण नहीं करते, तब तक आर्थिक ढांचा चल नहीं सकता। इसलिए उन्होंने एक तरीका निकाला नवस्वतंत्र देशों के शासकों को खरीदने का। लेकिन खरीदने की जो प्रक्रिया थी, वह उन देशों के लिए तो बड़ी आसान थी, जहाँ तानाशाही थी क्योंकि तानाशाह एक था। लेकिन इसके ठीक विपरीत जहाँ लोकतंत्र था, वहाँ केवल ५-२५ लोगों को खरीदने से काम नहीं हो सकता था। और हिन्दुस्थान तो दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश था।

हमारे यहाँ एक संविधान लागू किया गया, वह संविधान हिन्दुस्थान की भूमि से नहीं उपजा था। भारत की परम्परा और संस्कृति से निकला हुआ संविधान नहीं था। भारत में लोकतंत्र हमेशा रहा है। भारतीय प्रकृति का लोकतंत्र यदि यहाँ लाया जाता तो हमारी जनता उसे तुरन्त ग्रहण कर सकती थी क्योंकि हमारे रक्त में वह परम्परा है। श्रेष्ठ विचारको ने इसके विषय में पहले ही चेतावनी दी थी कि यह “पश्चिमी मॉडल” हमारे देश के लिए अनुकूल नहीं है। १९०९ में महात्मा गांधी ने “हिन्द स्वराज” नाम की एक छोटी पुस्तिका में आदर्श समाज-रचना का एक खाका प्रस्तुत किया। उसमें उन्होंने स्पष्ट कहा कि हिन्दुस्थान जैसे देश के लिए इंग्लैड का मॉडल अनुकूल नहीं होगा। १९१५ में योगी श्री अरविन्द ने कहा कि यह पश्चिमी संसदीय लोकतंत्र हमारे अनुकूल नहीं है। गुरु गोलवलकर ने भी यही कहा। १९२६ में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी (राजा जी) ने लिखा कि पश्चिम की तरह का लोकतंत्र बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक के विचार वाला लोकतंत्र आएगा तो देश तबाह हो जाएगा। भ्रष्टाचार बहुत बढ़ेगा। लोगों का चरित्र गिर जाएगा। इससे बचने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्ष पूर्व मानवेन्द्रनाथ राय ने देश-विदेश के संविधानों का अध्ययन किया। उसके बाद उन्होंने कहा कि इंग्लैंड का मॉडल यदि हमारे देश में आ जाए तो यशस्वी होने की संभावना नहीं है। किन्तु देश के यशस्वी होने के लिए बड़े पैमाने पर जनता के शिक्षित होने की आवश्यकता है। आचार्य विनोवा भावे और लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने दल विहीन लोकतंत्र की बात कही थी।

## एकाधिकार का मतलब

इस संदर्भ में अधिक महत्त्व की बात यह है कि जहाँ ४४ करोड़ लोग पूर्णरूपेण निरक्षर है बचे हुए लोगों में से १२ करोड़ लोग शिक्षित हैं और ५०-६० प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। जिस देश में इतने लोग गरीब हों, इतनी निरक्षरता हो, वहाँ इंग्लैण्ड का मॉडल क्या काम करेगा? जहाँ इतनी निरक्षरता है, वहाँ घोषणापत्र पढ़कर कौन वोट देगा? ऐसे देश में सबसे आसान रास्ता यही माना गया कि वोट खरीदे जाएँ। यदि खरीदने है तो इसके लिए पैसा चाहिए। पैसा गरीबों से नहीं आएगा पैसा पूंजीपतियों से आएगा। और पैसे वाले अपने आर्थिक सहयोग की कीमत भी वसूलेंगे। उनके पैसे से हुकुमत में आए शासकों पर अपना पैसा वापस पाने के लिए वे जनता का शोषण करने की खुली इजाजत देने के लिए दबाव डालेंगे। इसी शर्त पर पूंजीपतियों द्वारा पैसा दिया जाता है। फिर वे सारी नीतियां लागू करनी पड़ती हैं जो पूंजीपतियों के लिए उपयुक्त हैं और इस तरह से परस्पर समझौता चलता है। भारत में यही हुआ। इस संदर्भ में पूंजीपति का मतलब एकाधिकार वाले पूंजीपतियों से है, जिनमें मध्यम श्रेणी के पूंजीपतियों की कहीं गिनती ही नहीं है। देश के अर्थशास्त्र में छोटे और मध्यम वर्ग के पूंजीपतियों की गिनती नहीं है और न विश्व की अर्थव्यवस्था में इनके योगदान की चर्चा होती है।

इन सब देशी-विदेशी पूंजीपतियों के साथ राजनेताओं के समझौते केवल पैसे के लिए होते हैं। इसी पैसे के लिए ये राजनेता देश के साथ गद्दारी करते हैं। अब यहाँ एक प्रश्न खड़ा होता है कि क्या विदेशी पैसे के बिना हम आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सकते हैं? इसका उत्तर भी सकारात्मक है। यदि लोगों में देशभक्ति की भावना जाग्रत की जाती, जिसके कारण हम घरेलू बचत बढ़ाते, उपभोग को नियंत्रित रखते तो हमारे ही अन्दर पूंजी बनाने की ताकत बहुत ज्यादा आ जाती।

जहाँ तक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और विदेशी पूंजी निवेश का सवाल है तो इन सारे निवेशों का विरोध करना दकियानूसी है। विदेशी निवेश पूरी दुनिया में चलता है। इंग्लैड, फ्रांस, अमरीका, जर्मनी, इटली जैसे विकसित देश भी विदेशी निवेशों का स्वागत करते हैं। लेकिन इस संदर्भ में यह समझना होगा कि विकसित देशों में जो विदेशी निवेश होता

है और हमारे देश में जो निवेश होता है या तृतीय विश्व के सभी देशों में होता है, उसमें क्या अन्तर है। विकसित देशों में जो विदेशी निवेश होता है वह उनकी शर्तों पर होता है। वे अपने राष्ट्रहित का पूरा ध्यान रखते हैं। हमारे यहाँ जो विदेशी निवेश होता है वह निवेशकों की शर्तों पर होता है, इसमें हमारे देश के हित का ध्यान नहीं रखा जाता। कई निवेश तो ऐसे होते हैं जिनमें स्पष्ट दिखता है कि इससे देश का नुकसान होगा। यहाँ यह भी समझना होगा कि धनी देशों के सामने भी अपने पैसे को बाहर के देशों में खर्च करने पर मजबूरी है। इस सम्बन्ध में विदेशों में बातचीत के लिए जाने वाले हमारे राजनेता और सचिव यदि अपने देश के हित का विचार करते हुए अपनी शर्तों पर समझौता करते तो देश की यह दशा न होती। यह ठीक है कि लेन-देन में कुछ कम-ज्यादा होता है लेकिन आज जिस प्रकार के खतरनाक समझौते हुए है ऐसे समझौते नहीं होते। उदाहरण के लिए कुछ वर्ष पहले की बात है, उस समय राजीव गांधी प्रधानमंत्री थे। मैं कलकत्ता में था। मेरे पास बैठे एक कम्युनिस्ट नेता ने समाचार पत्र देखकर कहा कि प्रधानमंत्री राजीव गांधी का वक्तव्य है कि अगली 1 अप्रैल से उत्तर-पूर्व क्षेत्र में राष्ट्रीय कपड़ा मिलों को केन्द्र सरकार से मिलने वाला अनुदान बंद कर दिया जाएगा। मैंने कहा कि यह वक्तव्य राजीव गांधी का नहीं है, वह तो सिर्फ प्रवक्ता हैं। अगले दिन के अखबार में छपी खबर से यह भी साफ हो गया कि विश्व बैंक ने दो माह पूर्व प्रधानमंत्री को पत्र लिखा था कि उत्तर-पूर्व क्षेत्र की राष्ट्रीय कपड़ा मिलों को दिया जा रहा अनुदान यदि आपने 1 अप्रैल से बंद नहीं किया तो जो ऋण हमें देना है, वह हम नहीं देंगे।

## हानिप्रद नई तकनीक

एक बहुत बड़ी भ्रांति हमारे देश में फैलाई गई है कि विदेशी तकनीक के बिना हम प्रगति नहीं कर सकते। यह पूर्ण सत्य नहीं है। आम आदमी भी समझता है कि स्वदेशी के नाम पर यदि हम विदेशी तकनीक का विरोध करेंगे तो यह निश्चित रूप से देश को पीछे छोड़ने वाली बात होगी। इसके विषय में शास्त्रोक्त कदम होना चाहिए कि हम राष्ट्रीय तकनीक की नीति विकसित करें। इस पर चार तरीकों से विचार करें। हमारे जितने तकनीकी विशेषज्ञ हैं वे दुनिया भर में जितनी विकसित तकनीक है उसका

अध्ययन करें। यह तो विदित ही है कि विज्ञान और तकनीक में हमारे देश के लोग पीछे नहीं है। नासा में भारतीय, अमरीकी-जर्मन लोगों के कंधे से कन्धा मिलाकर काम कर रहे है, उनका बड़ा सम्मान है। इसलिए यह तय करें कि विदेशी तकनीक का कौन-सा हिस्सा देश की परम्परा, परिस्थितियों, आवश्यकताओं और भविष्य की आकांक्षाओं की दृष्टि से लाभदायक हो सकता है। दूसरा- ऐसे कौन से क्षेत्र हैं जिनमें विदेशी तकनीक में थोड़ा हेर-फेर करते हुए उसे लाया जाए तो देश को फायदा हो सकता है। तीसरा- देश को हानि पहुंचाने वाली तकनीक को पूरी तरह अस्वीकार कर देना, छोड़ देना, उसे लाने के लिए सोचना ही नहीं। चौथा- यह क्षेत्र है परम्परागत दस्तकारियों का। जहाँ उनकी तकनीक का कोई उपयोग नहीं है, वहाँ हमें ही अपनी तकनीक विकसित करनी पड़ेगी। इसका निर्णय करने के लिए राष्ट्रीय तकनीक नीति होनी चाहिए।

तकनीक के बारे में भी भ्रम है। भ्रम यह है कि हर एक नई तकनीक मानवता के लिए उपयोगी है। लेकिन ऐसा है नहीं। नई तकनीक के बारे में यह स्पष्ट है कि वह अकेली नहीं आती बल्कि पाश्चात्य सभ्यताएं भी आती हैं। हमारे देश के लोग यह समझते हैं कि हमारी परम्पराएं और संस्कृति तो अपनी ही रहें, जबकि नई तकनीक बाहर से लाई जाए। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता। नई सभ्यता के साथ आने वाली तकनीक से जितना हमारा पुराना ढांचा है वह सब नष्ट हो जाएगा। दूसरी बात उनकी सारी तकनीक लोगों को बेरोजगार करने वाली है। यह संभव है कि कुछ क्षेत्र हमारी अर्थव्यवस्था के ऐसे हैं जहाँ उच्च तकनीक की आवश्यकता है। खासकर देश की सुरक्षा के लिए। लेकिन ज्यादातर क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ उच्च तकनीक की आवश्यकता नहीं है और वहीं वे उच्च तकनीक लाना चाहते हैं। जबकि इसके विपरीत हाल यह है कि जहाँ हमको उच्च तकनीक चाहिए वहाँ वे देने वाले नही हैं।

हमारा कल्याण करना उनका उद्देश्य नहीं है। जहाँ उनकी उच्च तकनीक परम घातक है उसी क्षेत्र में वे ला रहे हैं और वह खपत का क्षेत्र है, उपभोक्ता वस्तुओं का क्षेत्र। क्या हमारे देश में हम टूथ पेस्ट, टूथ ब्रश नहीं पैदा कर सकते। उपभोक्ता वस्तुओं का जो क्षेत्र है वह तो पूर्णरूपेण हमारे लिए खुला रहना चाहिए। हमें जहाँ निवेश की आवश्यकता है वहाँ वे नहीं करेंगे। उच्च तकनीक के कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ हम उनकी

नई तकनीक स्वीकार कर सकते हैं। जो वे देने वाले नहीं हैं क्योंकि हमारी प्रगति हो यह उनकी इच्छा नहीं है। हमें किसी भी तकनीक का विवेकहीन विरोध नहीं करना चाहिए लेकिन विवेकहीन स्वागत भी नहीं करें। वे लोग कहते हैं कि, “up-to-date” (अधुनातन) तकनीक ला रहे हैं। लेकिन कोई भी सरकारी नेता यह बताए कि ४५ साल में हमने कौन सी “up-to-date” (अधुनातन) तकनीक ली है। विदेशों में ऐसी परिस्थिति है कि तकनीक प्रयोग चलते रहते हैं। होता यह है कि एक वस्तु के निर्माण करने के लिए आज जो तकनीक है वह ५-६ महीने में “outdated” (प्रयोग से बाहर) हो जाती है। नई तकनीक का निर्माण होता है। लेकिन पुरानी तकनीक की मशीनरी, जो उनके गोदाम में पड़ी है, ऐसी पुरानी तकनीक वे हमारे देश पर लाद देते है। क्या हमारी सरकार यह बता सकती है कि पिछले सालों में जो तकनीक हमने ली है, देश को हर हाल में उनकी जरूरत थी? यह आश्चर्य की बात है कि हमारी सरकार नई के नाम पर जो मशीनरी आयात करती है वह ४० प्रतिशत से ६० प्रतिशत तक काम में ली जा चुकी होती है। अपनी मशीनरी को बेचना था इसलिए बेचा जबकि हमारे राजनेताओं ने मजबूरी वश उसे स्वीकर किया और हमे बताते हैं कि यह आधुनिक तकनीक है।

पिछले दिनों प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिंह राव ने कहा कि नई तकनीक के कारण उद्योगों में जिन मजदूरों की छंटनी हो रही है, उनको हम नई तकनीक का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करेंगे। लेकिन यह वास्तविकता नहीं है। अमरीका में भी पहले यही कहा गया था। लेकिन वहाँ का अनुभव यह बताता है कि पुन: प्रशिक्षण के लिए जिस न्यूनतम शैक्षिक योग्यता की आवश्यकता होती है वह इस श्रेणी के मजदूरों में नहीं मिलती। इस वजह से अमरिका में आर्थिक असंतोष बढ़ गया। यह सारी बात प्रधानमंत्री को बताने का काम सचिवों का है। लगता है कि उनको बताया नहीं गया।

## उपयुक्त तकनीक की पहचान

पश्चिमी देशों में भी नई तकनीक का लाभ हुआ है क्या? अणुबम के निर्माण को लेकर आइंस्टीन रोने लगे। रोबर्ट औपनहाईमर (J. Robert Oppenheimer) ने कहा कि गलती हुई है, यह नया अनुसंधान करना ही नहीं चाहिए था। राजनेताओं के हाथ में जाने के बाद नागाशाकी और हिरोशिमा का विनाश हुआ। दोनों वैज्ञानिक रोने लगे।

आज तो परमाणु बमों के कारण विश्व विनाश के कगार पर खड़ा हुआ है यह सारा नई तकनीक का परिणाम है।

कौन सी तकनीक उपयुक्त है कौन सी नहीं? विनाशकारी कौन-सी है, संवर्धक कौन-सी है, इसका विचार होना चाहिए। कम्प्युटर तकनीक के जनक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. विन्नेर (Wilnner) भी कहते हैं कि विज्ञान और तकनीक की अनियंत्रित प्रगति होगी तो मनुष्य को लाभ ही होगा, इसकी गारंटी क्या है? उन्होंने कहा कि तकनीक पर नियंत्रण रखने वाली संस्था होनी चाहिए जो वैज्ञानिकों और तकनीक के जानकारों की न हो बल्कि सांस्कृतिक प्रवृत्ति के मानवजाति का कल्याण चाहने वाले जो लोग हैं उनकी नियंत्रित संस्थाएं होनी चाहिए।

विदेशी आर्थिक साम्राज्यवाद के विषय में जनजागरण का अभियान प्रारम्भ ही हुआ था तो इतने में एक बड़ा कुठाराघात देश पर होने की स्पष्ट संभावना दिखने लगी। यह आघात था डंकेल प्रस्तावों का। "General Agreement on Tariffs and Trade" के प्रधान आर्थर डंकेल (Arthur Dunkel) के ये प्रस्ताव "पक्षपातपूर्ण" हैं ऐसा आरोप प्रथम लगाने वाली भारत सरकार को दबाव के कारण उनमें कुछ अच्छे (Positive) पहलू भी है यह साक्षात्कार होने लगा, और उन प्रस्तावों की वकालत करना सरकारी नेताओं ने प्रारम्भ किया। किन्तु पार्लियामेन्ट के भीतर तथा बाहर उनके विषय में जो चर्चाएं हुईं उनमें से यह स्पष्ट हुआ कि Trade-Related Investment Measures (TRIMs), Trade-Related Aspects of Intellectual Property Rights (TRIPs), General Agreement on Trade in Services (GATS) तथा General Agreement on Tariffs and Trade (GATT) ये चारों घनिष्ठ रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं, चारों मिलकर अविभाज्य "package deal" बने है जिनके बारे में कहा जाता है, "लेना चाहोगे तो पूर्णरूपेण लेना होगा, छोड़ना चाहोगे तो पूर्णरूपेण छोड़ना होगा" , "package" में से कुछ हिस्सा दिया और कुछ छोड़ दिया ऐसा करने के लिए गुंजाइश नहीं है। डंकेल प्रस्तावों पर हस्ताक्षर होते ही वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का कानूनी दस्तावेज बन जाता है, "द्विपक्षीय समझौता" ऐसा उसका स्वरूप नहीं रहता। अमेरिका के ख्यातनाम विशेषज्ञों ने तीसरी दुनिया के देशों को अपनी आर्थिक तथा वैज्ञानिक गुलामी

में जकड़ने के लिए अति कुशलता पूर्वक तैयार किया हुआ यह प्रस्तावों का उलझनों वाला दस्तावेज ठीक ढंग से समझना राजनेताओं के बस की बात ही नहीं है, उसके लिए न्यायविद् (Jurists), शास्त्रज्ञ (Scientists) तथा अर्थशास्त्री (Economist) इनका आयोग बनाकर उसके द्वारा इन प्रस्तावों पर रिपोर्ट मंगवाना आवश्यक है, यह ध्यान में आता था। किन्तु विदेशी पूंजी के दबाव में चल रहे सरकारी नेता ऐसा आयोग नियुक्त करें यह भी अपेक्षित नही था। देश के सभी न्यायविदों ने, राज्यशास्त्रज्ञो ने, अर्थशास्त्रियों ने तथा विभिन्न वाणिज्य संस्थाओं ने (FICCI तथा ASSOCHAM को छोड़कर) इनका विरोध किया तो भी सरकार उनके रुख के सामने नहीं झुकेगी यह भी स्पष्ट ही है।

I. Trade-Related Investment Measures (TRIMs)

II. Trade-Related Aspects of Intellectual Property Rights (TRIPs)

III. General Agreement on Trade in Services (GATS)

IV. General Agreement on Tariffs and Trade (GATT)

बजट, औद्योगिक नीति, आयात-निर्यात नीतियों पर डंकेल की कृपा स्पष्ट दिखाई देती है। डंकेल प्रस्ताव हमारे विविध क्षेत्रों पर विदेशियों का एकाधिकार प्रस्थापित करेगा, दवाइयों का (Pharmaceutics) क्षेत्र, कृषि क्षेत्र, नये बीजों का क्षेत्र, नये पौधों का क्षेत्र, नये जीवों का क्षेत्र, जीव विज्ञान का क्षेत्र, शास्त्रीय अनुसंधान का क्षेत्र आदि। बीज, पौधे, एवं कृषि से सम्बन्धित अन्य वस्तुओं से जुड़े हुए तकनीकी ज्ञान अधिकारों को स्वीकार करने से हमारी (तथा तृतीय विश्व के देशों की) कृषि समाप्त हो जाएगी। उपरोक्त वस्तुओं के क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश से हमारे लघु तथा कुटीर उद्योग समाप्त हो जाएंगे और बहुत बड़ी मात्रा में बेरोजगारी बढ़ेगी। “Product Patent” की व्यवस्था तथा उसका संरक्षण २० साल तक उपलब्ध रहेगा यह प्रावधान हमारे लिए अति घातक है। उत्पादन की हमारी प्रक्रियाओं के आधार पर नये अनुसंधान करने वाले हमारे तकनीकज्ञों के प्रगति के सभी द्वार बन्द हो जाएंगे। दवाइयों के क्षेत्र में हमारा उत्पादन समाप्त हो जाएगा, सब दवाइयाँ-जीवन संरक्षक दवाइयाँ भी विदेशों से

मंगवानी पड़ेगी, उनका आयात हमारे लिए बहुत महंगा पड़ेगा, दवाइयों की कीमतें आसमान को छू जाएंगी, और लाखों गरीबों को दवाइयों के अभाव मैं अपनी जान खोनी पड़ेगी। उदाहरणार्थ, हृदय रोग में आवश्यक है “Lasix”। यह दवाई २३ गुना अधिक महंगी होगी। कैन्सर के लिए आवश्यक  केमोथेरेपी का खर्चा प्रति वर्ष ५ लाख तक होगा। गेस्ट्रोंएन्टरिक व्याधि की दवाइयां १३.७१ गुना महंगी हो जाएँगी। मतलब, लाखों गरीब उनके उपयोग से वंचित होकर अकाल मृत्यु के शिकार होंगे।

हमारे यहाँ के तथाकथित प्राथमिक बीजों को विदेशी अपने देश में ले जाएंगे, उनके वहाँ अपनी प्रयोगशालाओं में “संस्कारित” करेंगे, उनका “Product Patent” होने के कारण भेजा हुआ वह बीज उन्होंने तय किये हुए रेट पर खरीदने के लिए हमारे किसान बाध्य हो जाएंगे, हालांकि हमारे किसान सब तरह के बीजों का उत्पादन करने की क्षमता रखते है और हमारी प्रयोगशालाएं उनको “अधिकतम संस्कारित” करने की क्षमता रखती है। रासायनिक खादों की भी यही बात है। भारत का कृषि अनुसंधान समाप्त हो जाएगा। प्राणीसृष्टि, वनस्पति सृष्टि तथा जीवसृष्टि का भी पेटैंट उन्होंने ले लिया तो हमारी कितनी दुर्दशा होगी?

अगर भारत के वैज्ञानिक किसी वस्तु को बदले हुए प्रोसेस के आधार पर पैदा कर लेते हैं तो उस पर भी रोक और उस प्रोसेस पर भी रोक जिस प्रोसेस को उन्होंने अपनी प्रतिभा से निकला। प्रॉडक्ट और प्रोसेस पर रोक लगाने का मतलब होगा हमारे विचारवानों के दिमाग को सील कर देना। उनको इस बात का अवसर नहीं होगा कि वे नई खोज, नये आविष्कार करें।

“Product Patent” के विषय में (अन्न, chemicals तथा pharmaceuticals के क्षेत्र में) हमें १.१.२००३ तक रियायत दी गई है। यह घोषणा भी भ्रांति पैदा करने वाली है। सन् २००३ में जिन लोगों ने पेटेंट का अधिकार प्राप्त कर लेना है उन्हें ऐसे पेटेंट के लिए निवेदन पत्र भरने का अधिकार अगले वर्ष से ही प्राप्त होगा। इसका परिणाम क्या होगा? जो वस्तुएं सन् २००३ में पेटेंट का विषय बनेंगी उनके क्षेत्र में अनुसंधान तथा विकास विभाग चलाने की मूर्खता कौन उद्योग करेगा? प्रत्यक्ष में डंकेल प्रस्तावों के

कारण हमारी अनुसंधान तथा क्षमता ही अनुपयुक्त हो जाएगी और हम वैज्ञानिक क्षेत्र में भी गुलाम बन जाएंगे।

टेक्सटाइल तथा कृषि के क्षेत्र में डंकेल प्रस्ताव लाभदायक हैं, यह दलील भी झूठ है। उद्योगों के क्षेत्र में विदेशी पूंजी निवेश, देशी पूंजी निवेशकों के स्तर पर लाने से देशी उद्योगों को धक्का लगेगा। अमेरिका खुद के उद्योगों को विशेष संरक्षण दे रही है, और हमें बता रही है कि हमने "मुक्तद्वार" नीति का स्वीकार करना चाहिए। विदेशियों के "Equity Participation" पर कोई रोक नहीं रहेगी। उनके किसी भी पूंजीनिवेश पर कोई भी रोक नहीं रहेगी। स्थानीय कच्चा माल, स्थानीय अर्द्धनिर्मित माल देशी बाजार से ही खरीदना विदेशियों के लिए अनिवार्य नहीं रहेगा। ये बाहर से विदेशी कच्चा माल तथा विदेशी कर्मचारियों को भारत में लाकर यहाँ उत्पादन प्रारम्भ कर सकेंगे।

अभी तक हमारे कानूनों में यह अनिवार्यता है कि विदेशी कंपनियां भारत में जो उद्योग लगाएगी, उनके उत्पादन का कुछ परसेन्टेज निर्यात के लिए उपलब्ध कराएगी। विदेशों को निर्यात करेगी, ताकि विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके। अब यह निर्यात की अनिवार्यता भी उनके ऊपर लागू नहीं होगी। स्वदेशी उत्पादन, स्वदेशी कल-कारखाने, स्वदेशी गुणवत्ता तथा स्वदेशी श्रम शक्ति के लिए डंकेल प्रस्तावों के कारण घातक खतरा पैदा हुआ है।

अमेरिका स्वयं अपने किसानों को कृषि माल के निर्यात के लिए करोड़ों डॉलर्स की सब्सिडी दे रहा है। किन्तु हमारे देश के किसानों को, हमें रासायनिक खादों को तथा सीमान्त किसानों को भी सब्सिडी नहीं देना चाहिये, यह डंकेल का हमें आदेश है। सब्सिडी पर रोक लगने से औद्योगिक तथा कृषि माल के उत्पादन को बड़ा धक्का लगेगा। सब्सिडी के अभाव में सार्वजनिक वितरण प्रणाली गरीब लोगों के लिए अनुपयुक्त हो जाएगी।

हमें बताया जा रहा है कि अनिवार्य लाइसेन्स का प्रावधान व्यापक और खर्चीला है। अनिवार्य लाइसेन्स के बारे में भारत अपने कानून बना सकेगा। किन्तु यह भी भ्रांतिपूर्ण

बात है। डंकेल प्रस्तावों में ही अन्यत्र यह व्यवस्था की गई है कि उसके कारण अनिवार्य लाइसेंसिंग के विषय में हमारा अधिकार व्यावहारिक स्तर पर समाप्त हो जाता है।

“Paris Convention” को स्वीकार किया गया, डंकेल ड्राफ्ट की २८वीं धारा के अंतर्गत पेटेंट धाराओं को कुछ नये अधिकार प्रदान किये गये तो अनिवार्य लाइसेंसिंग के क्षेत्र में भारत सरकार का अधिकार समाप्त प्राय हो जाएगा। विदेशों में निर्मित पेटेंट प्राप्त दवाइयों के लिए कोई अनिवार्य लाइसेंसिंग नहीं रहेगा। उससे उन दवाइयों की कीमतें चाहे जितनी बढ़ सकेगी।

डंकेल के पश्चात् भारत सरकार ने आत्म निर्भरता को क्रमांक एक के बजाय क्रमांक पांच पर लाकर रखा है।

डंकेल की तलवार १०८ अविकसित देशों पर लटक रही है। स्पेशल ३०१ की धमकी देकर अमेरिका किसी को भी ब्लेकमेल कर सकता है। अब तक तृतीय विश्व के देश इस मामले में भारत की ओर देखते थे। अब वे हमसे निराश हुए हैं।

डंकेल प्रस्तावों के फलस्वरूप भारत का बजट बहुराष्ट्रीय कम्पनियां तय करेगी, करों में छूट कहाँ देनी, किस बात पर कितना कम या अधिक खर्चा करना है आदि सब बातें वे ही तय करेगी। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां ही भारत की सच्ची शासक बनेंगी। भारत सरकार असहाय, प्रेक्षक की भूमिका निभाएगी।

सरकारी नेता आज बहानेबाजी कर रहे हैं। किन्तु यह स्पष्ट है कि जाग्रत देशभक्त जनमानस का पर्याप्त दवाब सरकार पर नहीं लाया गया तो सरकार राष्ट्र की संप्रभुता की बलि चढ़ाकर विदेशी आर्थिक साम्राज्यवाद के समुख आत्म समर्पण करेगी।

इस मामले में सरकार को सही रास्ता लेने के लिए बाध्य करने की दृष्टि से “स्वदेशी जागरण मंच” का अभियान चलाया जा रहा है।

-दत्तोपंत ठेंगड़ी

स्वदेशी जागरण मंच
१२९ – साउथ एवेन्यू
नई दिल्ली-११००११

(२२ नवम्बर १९९२ को मुम्बई में संपन्न स्वदेशी जागरण मंच की अखिल भारतीय बैठक के अवसर पर आयोजित सार्वजनिक सभा में दिया गया उद्बोधन)

मुद्रक : सियाराम प्रिन्टर्स, १५६२,  मेन बाजार, पहाड़गंज, नई दिल्ली- ११००५५